International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 08-11-2020; Accepted: 23-11-2020; Published: 08-12-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 6; 2020; Page No. 134-136

कबीरदास : युग की माँग

डॉ. विष्णु तंकप्पन
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, पय्यन्नूर कॉलेज, पय्यन्नूर, केरल, भारत

सारांश
वर्तमान भारतीय समाज आज अनेक विषम परिस्थितियों से गुज़र रहा है । धार्मिक अंधविश्वास एवं भेदभाव, जातिवाद आदि के चंगुल में सामाजिक जीवन उलझ रहा है । जनता का दम घुटता जा रहा है । धर्म और सत्ता के अजीब गठबंधन ने इतना डरावना रूप धारण कर लिया है कि साहित्यकार भी इसके प्रति चुप्पी साधने के लिए विवश है । ऐसे सन्दर्भ में कबीर के अक्कड़ एवं विद्रोही व्यक्तित्व की प्रासंगिकता असंदिग्ध है । प्रस्तुत आलेख में आज की दुनिया में कबीर जैसे समाजोन्मुखी व्यक्तित्व की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है । कबीर जिस प्रकार युग की माँग बन जाते हैं इस पर भी प्रकाश डाला गया है ।

मूलशब्द : कबीर, व्यक्तित्व, समाज सुधार, प्रासंगिकता

प्रस्तावना

कबीर साहित्य की पुनः चर्चा की अगर ज़रुरत है तो यही उसके लिए सबसे उपयुक्त समय है । आज दुनिया बहुत ही संकटग्रस्त समय का सामना कर रही है । ऐसी एक संकटग्रस्तता जिसका सामना मध्ययुग में कबीर ने किया था । कबीर जैसे अक्खड़ क्रांतिकारी व्यक्तित्व का उदय जातियों, धर्मों, वर्णों आदि में विभाजित पाखंडी समाज के बीच में हुआ था । दूसरे शब्दों में कहा जाय तो तथाकथित पाखंडी समाज ने कबीर को क्रांतिकारी बना दिया था । अगर ध्यान से देखा जाए तो वर्तमान स्थिति भी मध्ययुग से भिन्न नहीं है, बल्कि समस्याएँ ज़्यादा जटिल हो गयी हैं । धर्म के नाम पर हर कहीं कोलाहल मच रहा है । धर्म को लेकर लोगों की मानसिकता संकुचित होती जा रही है । कबीर ने जिस धार्मिक एकता की चाह की थी वह आज टूटती जा रही है ।

कबीर के विचारों पर दृष्टि डाले तो यह कह सकते हैं कि कबीर ने तत्कालीन समाज की संकटग्रस्तता को पहचाना और उसके विरुद्ध आवाज़ उठायी । मध्यकालीन समाज में बहुत अधिक कुरीतियाँ और कुप्रथाएँ विद्यमान थीं । दुनिया इसके प्रति अनभिज्ञ थी और आँखें मूंदकर इन सबको मानती थी । कबीर दुनिया की इस अज्ञता और अंधेपन को समझते थे और इसलिए उन्होंने कहा-

> "यह जग अंधा मैं केहि समझावौ
> घर की वस्तु नज़र नहीं आवत दियना बारि के
> ढूँढत अंधा ।" [1]

कबीर ने धार्मिक एकता पर बल दिया तथा धार्मिक अनाचारों का घोर विरोध किया । धार्मिक कुरीतियों का एक-एक करके समाज के सामने प्रस्तुत किया । उनमें बाह्याडंबर, मूर्तिपूजा, बहुदेव उपासना, तीर्थाटन आदि शामिल था । मूर्तिपूजा, मंत्रोच्चारण, तीर्थाटन आदि पर लोग आँखें मूंदकर विशवास करते थे । उस समय समाज के केंद्र में ब्राह्मण वर्ग था । उनके द्वारा बनाए गए अनाचारों को नियम मानकर लोग उसका अनुसरण करते थे । कबीर ने कभी भी ईश्वर का विरोध नहीं किया है बल्कि उन्होंने एकेश्वरवाद पर बल दिया है । कबीर के एकेश्वरवाद को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफसर इरफ़ान हबीब कहते हैं- "वास्तव में कबीर ऐसे एकेश्वरवाद की स्थापना करते हैं जिसमें ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण तो है परन्तु सारे धार्मिक अनुष्ठानों को नकारा गया है और इस तरह वह कट्टर इसलाम से बहुत आगे निकल गया है । कबीर के लिए ईश्वर से एकाकार होने का अर्थ मनुष्यों का एक होना है और इसलिए वहाँ शुद्धता और छुआछूत की प्रथा को संपूर्ण रूप से स्पष्ट शब्दों में नकारा गया है तथा सब तरह के अनुष्ठानों को अस्वीकार किया गया है तथा सब तरह के अनुष्ठानों को अस्वीकार किया गया है ।" [2] कबीर ने

हठयोग, तीर्थाटन, मूर्तिपूजा आदि सभी धार्मिक एवं ज्ञानपरक तत्वों पर पूर्ण रूप से शोध किया । अंत में उन्होंने इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि नामस्मरण ही जीवन का मूल सार है इसके अतिरिक्त अन्य सभी कार्य झंझट है या विनाश की ओर ले जाने वाला है । बाह्याचार का विरोध करते हुए कबीर कहते हैं-

"कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल
आदि अंत सब सोधिया, दूजा देखौ काल ।" [3]

मूर्तिपूजा का भी कबीर ने हमेशा विरोध किया है । ईश्वर को केवल पत्थर के रूप में मानना और उसकी आराधना करना कबीर को मान्य नहीं था । मूर्तिपूजा से जुड़े सभी अंधविश्वासों का उन्होंने विरोध किया । कबीर का यह व्यंग्य भरा कथन आज भी सार्थक है-

"पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहाड़
याते वह चक्की भली पीस खाय संसार ।" [4]

परंपरागत रीति-रिवाजों को माननेवाले समाज से उन्होंने कहा कि अगर तुम्हें पत्थर पूजने से ईश्वर साक्षात्कार मिलेंगे तो मैं पहाड़ को पूजने के लिए तैयार हूँ । पत्थर की देवमूर्ति से वह चक्की कहीं बेहतर है जो रोज़ आट्टा पीसने के काम आती है ।
ईश्वर प्राप्ति के लिए की जानेवाले मंत्रोच्चारण और ज़ोर-ज़ोर से पुकारनेवाले धार्मिक रीति-रिवाजों का पर्दाफ़ाश भी कबीर ने किया है । अपनी व्यंग्य भरी वाणी में इसका विरोध कबीर ने किया है ।

"कांकड़ पत्थर जोडि कै मस्जिद लई चुनाय ।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।"[5]

अर्थात ईश्वर सर्वव्यापी है तो फिर ज़ोर से पुकारने की ज़रुरत क्या है ? क्या वह बहरा है ? इस प्रकार के प्रश्न करते हुए तत्कालीन जनसाधारण को धर्मांध बनानेवाले पंडित और मुल्ला पर व्यंग्य कसते हैं । यह व्यंग्य धर्मांध पंडितों के दिल और दिमाग पर चोट करने के लिए सक्षम था ।

"कली का स्वामी, लोभिया, पीतल धरी खटाई
राजदुबारै यों फिरै, ज्यों हरहाई गई ।" [6]

कबीरदास कहते हैं कि कलियुग के कुछ साधू दिखावटी एवं लोभी होते हैं जैसे पीतल के बर्तन में पडी खटाई । वे दूसरों के खेत खलिहान पर चरनेवाली गाय के समान राजदरबारों में लोभवश चक्कर काटते रहते हैं ।
कबीर ने अंधविश्वासों एवं रूढिगत मान्यताओं का विरोध मात्र नहीं किया बल्कि पतनोन्मुखी समाज को दिशा-निर्देशन भी किया । उन्होंने एक ऐसा भक्तिमार्ग की परिकल्पना की जहाँ पर सभी मनुष्य बिना जाति-भेद के रह सकते थे । साथ ही कबीर ने एक ऐसे सत्य की उद्घोषणा भी की कि तेरा ईश्वर तुझ में ही है ।

"मोको कहाँ ढूँढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना कबे कैलास में।"[7]

कबीर के अनुसार ईश्वर न मंदिर में होता है, न मस्जिद में बल्कि हमारे भीतर ही वास करता है । दरअसल सबके भीतर वह ज्योति प्रकाशमान है । वहाँ कोई धार्मिक भेदभाव की ज़रूरत ही नहीं है । लेकिन वर्तमान समय में देश की हालत को देखकर महसूस होता है कि धार्मिक एकता की स्थापना के लिए आज यहाँ एक नहीं अनेकों कबीर की ज़रूरत है । कबीर के व्यक्तित्व की महत्ता को उद्घोषित करते हुए डॉ. नगेन्द्र कहते हैं- "वे जन्म से विद्रोही प्रकृति से समाज-सुधारक, कारणों से प्रेरित होकर धर्म-सुधारक, कारणों से प्रेरित होकर धर्म-सुधारक प्रगतिशील दार्शनिक और आवश्यकतानुसार कवि थे ।" [8] आज के ज़माने में निश्चय ही ऐसे विद्रोही, क्रांतिकारी, समाज-सुधारक नेतृत्व की आवश्यकता है जो इस अंधी दुनिया को सही दिशा प्रदान कर सकता है । उर्दू के प्रसिद्ध शायर अली सरदार जाफरी के शब्दों में शब्द मिलाकर कहा जाए तो "हमें आज भी कबीर के नेतृत्व की ज़रुरत है, उस रोशनी की ज़रुरत है जो इस संत के दिल से पैदा हुई थी । आज दुनिया आज़ाद हो रही है । विज्ञान की असाधारण प्रगति ने मनुष्य का प्रभुत्व बढ़ा दिया है । उद्योगों ने उसके बाहुबल में वृद्धि कर दी है । मनुष्य सितारों पर कमंदें फेंक रहा है । फिर भी वह तुच्छ है, संकटग्रस्त है, दुखी है । वह रंगों में बंटा हुआ है, जातियों में विभाजित है । उसके बीच धर्मों की दीवारें खडी हुई हैं । सांप्रदायिक द्वेष है, वर्ग संघर्ष की तलवारें खिंची हुई है ।" [9]

सन्दर्भ संकेत

1. संपादक डॉ.ठाकुर जयदेव सिंह, डॉ.वासुदेव सिंह- कबीर वाणी पीयूष, पृ.26
2. प्रो.इरफ़ान हबीब- साम्प्रदायिकता और संस्कृति के सवाल, पृ.23
3. संपादक डॉ.ठाकुर जयदेव सिंह, डॉ.वासुदेव सिंह-

कबीर वाङ्मय, खंड 3, साखी, पृ.20
4. संपादक डॉ.ठाकुर जयदेव सिंह, डॉ.वासुदेव सिंह- कबीर वाणी पीयूष, पृ.57
5. वही
6. वही
7. वही
8. डॉ.नगेन्द्र- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.128
9. अली सरदार जाफरी- कबीर वाणी, पृ.35